

Chapter सोलह

भगवान् परशुराम द्वारा विश्व के क्षत्रियों का विनाश

जैसा कि इस अध्याय में वर्णन हुआ है, जब कार्तवीर्यार्जुन के पुत्रों ने जमदग्नि को मार डाला तो परशुराम ने सम्पूर्ण संसार को इक्कीस बार क्षत्रियों से विहीन किया। इस अध्याय में विश्वामित्र के वंशजों का भी वर्णन हुआ है।

एक बार जब जमदग्नि की पत्नी रेणुका गंगा नदी से जल लेने गई तो वह गन्धर्वों के राजा को अप्सराओं के साथ विहार करते देखकर मोहित हो गई और उसने मन ही मन उसके साथ रमण करने की इच्छा की। इस पापपूर्ण इच्छा के कारण वह अपने पति द्वारा दंडित हुई। परशुराम ने अपनी माता तथा भाइयों को मार डाला, किन्तु बाद में जमदग्नि की तपस्या से वे सब जीवित हो उठे। उधर कार्तवीर्यार्जुन के पुत्र अपने पिता की मृत्यु का बदला भगवान् परशुराम से लेना चाहते थे; अतएव जब परशुराम आश्रम से बाहर गये हुए थे तो उन्होंने ध्यान में मग्न जमदग्नि को मार डाला। जब परशुराम आश्रम लौटे और उन्होंने अपने पिता को मरा पाया, तो वे अत्यन्त दुखी हुए। अपने भाइयों को मृत शरीर की रखवाली करने के लिए कह कर उन्होंने स्वयं इस पृथ्वी पर के सारे क्षत्रियों का विनाश करने का संकल्प किया और वे बाहर चले गये। वे अपना फरसा लेकर कार्तवीर्यार्जुन की राजधानी माहिष्मतीपुर गये और उसके सभी पुत्रों को मार डाला जिसके रक्त से एक बड़ी नदी बह चली। वे केवल कार्तवीर्यार्जुन के पुत्रों को मार कर ही संतुष्ट नहीं हुए; बाद में जब क्षत्रिय उत्पात करने लगे तो उन्होंने उनका इक्कीस बार वध किया जिससे पृथ्वी पर एक भी क्षत्रिय नहीं बच पाया। तत्पश्चात् परशुराम ने अपने पिता के सिर को मृत शरीर से जोड़कर भगवान् को प्रसन्न करने के लिए अनेक यज्ञ किये। इस प्रकार जमदग्नि के शरीर में फिर से प्राण का संचार हुआ और बाद में वे सप्तर्षि मंडल को प्राप्त हुए। जमदग्नि के पुत्र परशुराम आज भी महेन्द्र पर्वत में निवास करते हैं। अगले मन्वन्तर में वे वैदिक ज्ञान के प्रचारक होंगे।

गाधिवंश में अत्यन्त पराक्रमी विश्वामित्र ने जन्म लिया। वह अपनी तपस्या से ब्राह्मण बन गया। उसके १०१ पुत्र हुए जो मधुच्छन्दा नाम से विख्यात थे। हरिश्चन्द्र की यज्ञशाला में अजीगर्त के पुत्र शुनःशेफ की बलि होनी थी, किन्तु प्रजापतियों ने दया करके उसे मुक्त करा दिया। तत्पश्चात् वह गाधिवंश में देवराट के

नाम से विख्यात हुआ। किन्तु विश्वामित्र के पचास ज्येष्ठ पुत्रों ने शुनःशेफ को अपना अग्रज नहीं स्वीकार किया, अतएव विश्वामित्र ने उन्हें म्लेच्छ बनने का शाप दे दिया जो वैदिक सभ्यता के विरोधी थे। तब विश्वामित्र के इक्यावनवें पुत्र तथा उसके अन्य छोटे भाइयों ने शुनःशेफ को अग्रज स्वीकार किया। इस तरह उनके पिता विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर उन्हें आशीर्वाद दिया। इस प्रकार देवराट को कौशिक कुल का वंशज मान लिया गया; फलस्वरूप उस वंश के अनेक विभाग हो गये।

श्रीशुक उवाच

पित्रोपशिक्षितो रामस्तथेति कुरुनन्दन ।

संवत्सरं तीर्थयात्रां चरित्वाश्रममाव्रजत् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; पित्रा—अपने पिता द्वारा; उपशिक्षितः—शिक्षा दिये जाने पर; रामः—परशुराम; तथा इति—एवमस्तु; कुरु-नन्दन—हे कुरुवंशी महाराज परीक्षित; संवत्सरम्—एक वर्ष तक; तीर्थ-यात्राम्—सारे तीर्थस्थलों की यात्रा; चरित्वा—सम्पन्न करके; आश्रमम्—अपने आश्रम में; आव्रजत्—लौटा।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे महाराज परीक्षित, हे कुरुवंशी, जब भगवान् परशुराम को उनके पिता ने यह आदेश दिया तो उन्होंने तुरन्त ही यह कहते हुए उसे स्वीकार किया, “ऐसा ही होगा।” वे एक वर्ष तक तीर्थस्थलों की यात्रा करते रहे। तत्पश्चात् वे अपने पिता के आश्रम में लौट आये।

कदाचिद्रेणुका याता गङ्गायां पद्ममालिनम् ।

गन्धर्वराजं क्रीडन्तमप्सरोभिरपश्यत ॥ २ ॥

शब्दार्थ

कदाचित्—एक बार; रेणुका—परशुराम की माता एवं जमदग्नि की पत्नी; याता—गई; गङ्गायाम्—गंगा नदी के तट पर; पद्म-मालिनम्—कमल के फूल की माला से अलंकृत; गन्धर्व-राजम्—गन्धर्वों के राजा; क्रीडन्तम्—विहार करते; अप्सरोभिः—अप्सराओं के साथ; अपश्यत—देखा।

एक बार जब जमदग्नि की पत्नी रेणुका गंगा नदी के तट पर पानी भरने गई तो उन्होंने कमल-फूल की माला से अलंकृत तथा अप्सराओं के साथ गंगा में विहार करते गन्धर्वों के राजा को देखा।

विलोकयन्ती क्रीडन्तमुदकार्थं नदीं गता ।

होमवेलां न सस्मार किञ्चिच्चित्ररथस्पृहा ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

विलोकयन्ती—देखते हुए; क्रीडन्तम्—क्रीड़ा करते हुए; उदक-अर्थम्—कुछ जल लेने के लिए; नदीम्—नदी पर; गता—गई; होम-वेलाम्—होम करने की वेला में; न सस्मार—याद नहीं रही; किञ्चित्—थोड़ा; चित्ररथ—गन्धर्व राज चित्ररथ; स्पृहा—संसर्ग की इच्छा की।

वह गंगा नदी से जल लाने गई थी, किन्तु जब उसने गन्धर्वराज चित्ररथ को अप्सराओं के साथ विहार करते देखा तो वह उसकी ओर उन्मुख सी हुई और यह भूल ही गई कि अग्निहोत्र का समय बीत रहा है।

कालात्ययं तं विलोक्य मुनेः शापविशङ्किता ।

आगत्य कलशं तस्थौ पुरोधाय कृताञ्जलिः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

काल-अत्ययम्—समय बिताते; तम्—उसको; विलोक्य—देखकर; मुनेः—जमदग्नि के; शाप-विशङ्किता—शाप के भय से; आगत्य—लौटकर; कलशम्—जल के पात्र को; तस्थौ—खड़ी हो गई; पुरोधाय—मुनि के सामने रखकर; कृत-अञ्जलिः—हाथ जोड़कर।

तत्पश्चात् यह समझकर कि यज्ञ करने का समय बीत चुका है, रेणुका अपने पति द्वारा शापित होने से भयभीत हो उठी। अतएव जब वह लौटकर आई तो वह उनके समक्ष जलपात्र रखकर हाथ जोड़कर खड़ी हो गई।

व्यभिचारं मुनिर्ज्ञात्वा पत्न्याः प्रकुपितोऽब्रवीत् ।

घ्नतैनां पुत्रकाः पापामित्युक्तास्ते न चक्रिरे ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

व्यभिचारम्—व्यभिचार; मुनिः—जमदग्नि मुनि ने; ज्ञात्वा—जानकर; पत्न्याः—अपनी पत्नी का; प्रकुपितः—क्रुद्ध होकर; अब्रवीत्—बोला; घ्नत—मार डालो; एनाम्—इसको; पुत्रकाः—मेरे बेटो; पापाम्—पापी स्त्री को; इति उक्ताः—ऐसा कहे जाने पर; ते—उन पुत्रों ने; न—नहीं; चक्रिरे—आज्ञा का पालन किया।

मुनि जमदग्नि अपनी पत्नी के मन के पाप को समझ गये। अतएव वे अत्यन्त कुपित हुए और अपने बेटों से बोले, “पुत्रो, इस पापिनी स्त्री को मार डालो।” लेकिन बेटों ने उनकी आज्ञा का पालन नहीं किया।

रामः सञ्चोदितः पित्रा भ्रातृन्मात्रा सहावधीत् ।

प्रभावज्ञो मुनेः सम्यक्समाधेस्तपसश्च सः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

रामः—परशुराम ने; सञ्जोदितः—(अपनी माता तथा भाइयों को मारने के लिए) प्रोत्साहित किये जाने पर; पित्रा—अपने पिता द्वारा; भ्रातृन्—सारे भाइयों को; मात्रा सह—माता समेत; अवधीत्—तुरन्त मारा डाला; प्रभाव-ज्ञः—पराक्रम से अवगत; मुनेः—मुनि के; सम्यक्—पूर्णतया; समाधेः—ध्यान से; तपसः—तपस्या से; च—भी; सः—वह।

तब जमदग्नि ने अपने सबसे छोटे पुत्र परशुराम को अवज्ञाकारी भाइयों तथा मानसिक रूप से पाप करने वाली उसकी माता को मार डालने की आज्ञा दी। परशुराम ने तुरन्त ही अपनी माता तथा भाइयों का वध कर दिया क्योंकि उन्हें ध्यान तथा तपस्या द्वारा अर्जित अपने पिता के पराक्रम का ज्ञान था।

तात्पर्य : प्रभावज्ञः शब्द महत्त्वपूर्ण है। परशुराम को अपने पिता के पराक्रम का ज्ञान था अतएव उन्होंने अपने पिता की आज्ञा का पालन करने की हामी भर दी। उन्होंने सोचा कि यदि वे उनकी आज्ञा नहीं मानते तो वे शाप दे देंगे, किन्तु आज्ञा पालने पर वे प्रसन्न हो जायेंगे और उनके प्रसन्न होने पर परशुराम अपनी माता तथा भाइयों को वर माँग कर पुनः जीवन दिला सकेंगे। उन्हें इसका विश्वास था इसीलिए उन्होंने अपनी माता तथा भाइयों का वध करने की हामी भर दी।

वरेण च्छन्दयामास प्रीतः सत्यवतीसुतः ।
वब्रे हतानां रामोऽपि जीवितं चास्मृतिं वधे ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

वरेण च्छन्दयाम् आस—इच्छानुसार वर माँगने के लिए कहा; प्रीतः—उससे प्रसन्न होकर; सत्यवती-सुतः—सत्यवती-पुत्र जमदग्नि ने; वब्रे—कहा; हतानाम्—मेरी मृत माता तथा भाई; रामः—परशुराम; अपि—भी; जीवितम्—उन्हें जीवित कर दें; च—भी; अस्मृतिम्—कोई स्मरण नहीं; वधे—मेरे द्वारा मारे हुआ का।

सत्यवती-पुत्र जमदग्नि परशुराम से अत्यधिक प्रसन्न हुए और उनसे इच्छानुसार वर माँगने के लिए कहा। परशुराम ने कहा, “मेरी माता तथा मेरे भाइयों को फिर से जीवित हो जाने दें और उन्हें यह स्मरण न रहे कि मैंने उन्हें मारा था। मैं आपसे इतना ही वर माँगता हूँ।”

उत्तस्थुस्ते कुशलिनो निद्रापाय इवाञ्जसा ।
पितुर्विद्वांस्तपोवीर्यं रामश्चक्रे सुहृद्बधम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

उत्तस्थुः—तुरन्त उठ खड़े हुए; ते—परशुराम की माता तथा भाई; कुशलिनः—कुशलपूर्वक; निद्रा-अपाये—गहरी नींद के अन्त में; इव—सदृश; अञ्जसा—तुरन्त; पितुः—अपने पिता का; विद्वां—अवगत; तपः—तपस्या; वीर्यम्—बल; रामः—परशुराम ने; चक्रे—सम्पन्न किया; सुहृत्-वधम्—अपने परिजनों का वध।

तत्पश्चात् जमदग्नि के वर से भगवान् परशुराम की माता तथा उनके सारे भाई तुरन्त जीवित हो

उठे और वे सभी अत्यन्त प्रसन्न हुए मानो गहरी नींद से जगे हों। परशुराम ने अपने पिता के आदेश पर अपने परिजनों का वध कर दिया था क्योंकि वे अपने पिता के बल, तपस्या तथा विद्वत्ता से परिचित थे।

येऽर्जुनस्य सुता राजन्स्मरन्तः स्वपितुर्वधम् ।
रामवीर्यपराभूता लेभिरे शर्म न क्वचित् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

ये—जो; अर्जुनस्य—कार्तवीर्यार्जुन के; सुताः—पुत्र; राजन्—हे महाराज परीक्षित; स्मरन्तः—सदैव स्मरण करते हुए; स्व-पितुः वधम्—(परशुराम द्वारा) अपने पिता के वध; राम-वीर्य-पराभूताः—भगवान् परशुराम की श्रेष्ठ शक्ति द्वारा पराजित; लेभिरे—प्राप्त किया; शर्म—सुख; न—नहीं; क्वचित्—कभी।

हे राजा परीक्षित, परशुराम की श्रेष्ठ शक्ति द्वारा पराजित कार्तवीर्यार्जुन के पुत्रों को कभी सुख नहीं मिल पाया क्योंकि उन्हें अपने पिता का वध सदैव याद आता रहा।

तात्पर्य : जमदग्नि सचमुच अपनी तपस्या के कारण अत्यन्त शक्तिशाली थे, किन्तु अपनी पत्नी रेणुका के थोड़े से अपराध के लिए उन्होंने उसके वध किये जाने का आदेश दे डाला। यह निश्चय ही पापपूर्ण कृत्य था; अतएव कार्तवीर्यार्जुन के पुत्रों ने जमदग्नि को मार डाला, जैसा कि यहाँ पर बतलाया गया है। भगवान् परशुराम को भी कार्तवीर्यार्जुन के वध का थोड़ा पाप लगा, किन्तु यह इतना बड़ा पाप न था। अतएव चाहे कोई कार्तवीर्यार्जुन हो, भगवान् परशुराम हो, जमदग्नि हो या अन्य कोई, उसे सावधानी तथा बुद्धिमत्ता से कर्म करना चाहिए अन्यथा उसे पापकृत्यों का फल भुगतना पड़ता है। वैदिक साहित्य से हमें यही शिक्षा मिलती है।

एकदाश्रमतो रामे सभ्रातरि वनं गते ।
वैरं सिषाधयिषवो लब्धच्छिद्रा उपागमन् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

एकदा—एक बार; आश्रमतः—जमदग्नि के आश्रम से; रामे—जब परशुराम; स-भ्रातरि—अपने भाइयों के साथ; वनम्—वन में; गते—गये थे; वैरम्—पुरानी दुश्मनी; सिषाधयिषवः—पूरा करने के लिए; लब्ध-छिद्राः—अवसर का लाभ उठाकर; उपागमन्—आश्रम के निकट आये।

एकबार जब परशुराम वसुमान तथा अन्य भाइयों के साथ आश्रम से जंगल गये हुए थे तो कार्तवीर्यार्जुन के पुत्र अवसर का लाभ उठा कर अपनी शत्रुता का बदला लेने के उद्देश्य से जमदग्नि

के आश्रम में गये ।

दृष्ट्वाग्न्यागार आसीनमावेशितधियं मुनिम् ।
भगवत्युत्तमश्लोके जघ्नुस्ते पापनिश्चयाः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; अग्नि-आगारे—उस स्थान पर जहाँ अग्नियज्ञ सम्पन्न किया जाता था; आसीनम्—बैठे हुए; आवेशित—पूर्णतया मग्न; धियम्—बुद्धि से; मुनिम्—मुनि जमदग्नि को; भगवति—भगवान् में; उत्तम-श्लोके—उत्तम श्लोकों से प्रशंसित; जघ्नुः—मार डाला; ते—कार्तवीर्यार्जुन के पुत्रों ने; पाप-निश्चयाः—महान् पापकृत्य करने के लिए कृतसंकल्प ।

कार्तवीर्यार्जुन के पुत्र पापकृत्य करने के लिए कृतसंकल्प थे। अतएव जब उन्होंने जमदग्नि को अग्नि के निकट यज्ञ करते एवं उत्तमश्लोक भगवान् का ध्यान करते देखा तो उन्होंने इस अवसर का लाभ उठाकर उसे मार डाला ।

याच्यमानाः कृपणया राममात्रातिदारुणाः ।
प्रसह्य शिर उक्त्वत्य निन्द्यस्ते क्षत्रबन्धवः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

याच्यमानाः—अपने पति के जीवन की याचना करती हुई; कृपणया—बेचारी असुरक्षित स्त्री द्वारा; राम-मात्रा—भगवान् परशुराम की माता द्वारा; अति-दारुणाः—अत्यन्त क्रूर; प्रसह्य—बलपूर्वक; शिरः—जमदग्नि का सिर; उक्त्वत्य—विलग करके; निन्द्युः—ले गये; ते—कार्तवीर्यार्जुन के पुत्र; क्षत्र-बन्धवः—क्षत्रिय नहीं अपितु क्षत्रियों में सबसे नीच ।

परशुराम की माता तथा जमदग्नि की पत्नी रेणुका ने अपने पति के जीवन की भीख माँगी, किन्तु कार्तवीर्यार्जुन के पुत्र क्षत्रिय गुणों से रहित होने के कारण इतने क्रूर निकले कि उसकी याचना के बावजूद उन्होंने उसका सिर काट लिया और उसे अपने साथ लेते गये ।

रेणुका दुःखशोकार्ता निघ्नन्त्यात्मानमात्मना ।
राम रामेति तातेति विचुक्रोशोच्चकैः सती ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

रेणुका—जमदग्नि-पत्नी रेणुका; दुःख-शोक-अर्ता—(अपने पति की मृत्यु के) शोक से अत्यन्त दुखी; निघ्नन्ती—पीटते हुए; आत्मानम्—अपने शरीर को; आत्मना—स्वयं; राम—हे परशुराम; राम—हे परशुराम; इति—इस प्रकार; तात—हे पुत्र; इति—इस प्रकार; विचुक्रोश—रोने लगी; उच्चकैः—जोर जोर से; सती—वह सती स्त्री ।

अपने पति की मृत्यु के कारण शोक से विलाप करती सती रेणुका अपने ही हाथों से अपने शरीर को पीट रही थी और जोर जोर से चिल्ला रही थी, “हे राम, मेरे पुत्र राम ।”

तदुपश्रुत्य दूरस्था हा रामेत्यार्तवत्स्वनम् ।
त्वरयाश्रममासाद्य ददृशुः पितरं हतम् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

तत्—वह क्रन्दन; उपश्रुत्य—सुनकर; दूर-स्था:—दूरी पर स्थित; हा राम—हे राम, हे राम; इति—इस प्रकार; आर्त-वत्—अत्यन्त दुखी; स्वनम्—शब्द; त्वरया—तेजी से; आश्रमम्—जमदग्नि के आश्रम में; आसाद्य—आकर; ददृशुः—देखा; पितरम्—अपने पिता को; हतम्—मारा हुआ।

यद्यपि परशुराम सहित जमदग्नि के सारे पुत्र घर से बहुत दूरी पर थे, किन्तु ज्योंही उन्होंने रेणुका की “हे राम! हे पुत्र!” की तेज पुकार सुनी, वे तुरन्त आश्रम लौट आये जहाँ उन्होंने अपने पिता को मरा हुआ पाया।

ते दुःखरोषामर्षार्तिशोकवेगविमोहिताः ।
हा तात साधो धर्मिष्ठ त्यक्त्वास्मान्स्वर्गतो भवान् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

ते—वे, जमदग्नि के सारे पुत्र; दुःख—दुख; रोष—क्रोध; अमर्ष—अपमान; आर्ति—सन्ताप; शोक—तथा शोक का; वेग—वेग के साथ; विमोहिताः—मोहग्रस्त; हा तात—पिता; साधो—साधु; धर्मिष्ठ—अत्यन्त धर्मात्मा; त्यक्त्वा—छोड़कर; अस्मान्—हमको; स्वः-गतः—स्वर्ग चले गये; भवान्—आप।

शोक, क्रोध, अपमान, सन्ताप तथा शोक से ग्रस्त जमदग्नि के सारे पुत्र चिल्ला पड़े, “हे साधु एवं धर्मात्मा पिता, आप हमें छोड़कर स्वर्ग लोक को चले गये हैं।”

विलप्यैवं पितुर्देहं निधाय भ्रातृषु स्वयम् ।
प्रगृह्य परशुं रामः क्षत्रान्ताय मनो दधे ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

विलप्य—विलाप करते हुए; एवम्—इस प्रकार; पितुः—अपने पिता के; देहम्—शरीर को; निधाय—सौंपकर; भ्रातृषु—भाइयों को; स्वयम्—खुद; प्रगृह्य—लेकर; परशुम्—फरसा; रामः—भगवान् परशुराम; क्षत्र-अन्ताय—सारे क्षत्रियों का अन्त करने के लिए; मनः—मन; दधे—निश्चय कर लिया।

इस प्रकार विलाप करते हुए परशुराम ने अपने पिता का शव अपने भाइयों को सौंप दिया और स्वयं पृथ्वी तल से सारे क्षत्रियों का अन्त करने का निश्चय करते हुए अपना फरसा ग्रहण किया।

गत्वा माहिष्मतीं रामो ब्रह्मघ्नविहतश्रियम् ।
तेषां स शीर्षभी राजन्मध्ये चक्रे महागिरिम् ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

गत्वा—जाकर; माहिष्मतीम्—माहिष्मती में; रामः—परशुराम; ब्रह्म-घ्न—ब्राह्मण का वध करने वाले; विहत-श्रियम्—सारे ऐश्वर्य से विहीन, विनष्ट; तेषाम्—उन सबों का (कार्तवीर्यार्जुन के पुत्रों तथा अन्य क्षत्रियों का); सः—परशुराम ने; शीर्षभिः—शरीर से छिन्न सिरों से; राजन्—हे महाराज परीक्षित; मध्ये—माहिष्मती के बीचोंबीच; चक्रे—बना दिया; महा-गिरिम्—विशाल पर्वत।

हे राजन, तब परशुराम उस माहिष्मती नगरी में गये जो एक ब्राह्मण के पापपूर्ण वध के कारण पहले ही विनष्ट हो चुकी थी। उन्होंने उस नगरी के बीचोंबीच कार्तवीर्यार्जुन के पुत्रों के शरीरों से छिन्न किये गये सिरों का एक पर्वत बना दिया।

तद्रक्तेन नदीं घोरामब्रह्मण्यभयावहाम् ।

हेतुं कृत्वा पितृवधं क्षत्रेऽमङ्गलकारिणि ॥ १८ ॥

त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः ।

समन्तपञ्चके चक्रे शोणितोदान्हृदान्नव ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

तत्-रक्तेन—कार्तवीर्यार्जुन के पुत्रों के रक्त से; नदीम्—नदी को; घोराम्—भयानक; अब्रह्मण्य-भय-आवहाम्—उन राजाओं को भय दिखाती हुई जिन्हें ब्राह्मण संस्कृति के लिए कोई सम्मान नहीं है; हेतुम्—कारण; कृत्वा—स्वीकार करके; पितृ-वधम्—पिता का वध; क्षत्रे—जब सम्पूर्ण राज वर्ग; अमङ्गल-कारिणि—अत्यन्त अशुभ ढंग से कार्य कर रहा था; त्रिः-सप्त-कृत्वः—इक्कीस बार; पृथिवीम्—पृथ्वी को; कृत्वा—करके; निःक्षत्रियाम्—क्षत्रियविहीन; प्रभुः—भगवान् परशुराम; समन्त-पञ्चके—समन्त पञ्चक नामक स्थान पर; चक्रे—बनाया; शोणित-उदान्—जल के बजाय रक्त से पूरित; हृदान्—झीलें; नव—नौ।

इन पुत्रों के रक्त से भगवान् परशुराम ने एक वीभत्स नदी तैयार कर दी जिससे उन राजाओं को बड़ा खतरा उत्पन्न हो गया जिनमें ब्राह्मण संस्कृति के प्रति आदरभाव नहीं था। चूँकि सरकार के अधिकारी लोग अर्थात् क्षत्रिय पापकर्म कर रहे थे अतएव परशुराम ने अपने पिता की हत्या का बदला लेने के बहाने सारे क्षत्रियों का इक्कीस बार पृथ्वी से सफाया कर दिया। निस्सन्देह, उन्होंने समन्तपञ्चक नामक स्थान पर उन सबों के रक्त से नौ झीलें उत्पन्न कर दीं।

तात्पर्य : परशुराम भगवान् हैं और उनका शाश्वत ध्येय है—परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्—भक्तों की रक्षा और दुष्टों का विनाश करना। भगवान् के अवतार लेने के कार्यों में से एक है सभी पापी लोगों का वध करना। भगवान् परशुराम ने सारे क्षत्रियों का क्रमशः इक्कीस बार वध किया क्योंकि वे ब्राह्मण संस्कृति के पालक नहीं थे। यह तो बहाना था कि क्षत्रियों ने उनके पिता का वध कर डाला था। वास्तविकता तो यह थी कि राजन्य वर्ग या क्षत्रिय दूषित हो चुके थे और उनकी स्थिति अशुभ थी। शास्त्र में, विशेष रूप से भगवद्गीता में ब्राह्मण संस्कृति के लिए आदेश है (चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टम् गुणकर्मविभागशः)। प्रकृति के नियमानुसार चाहे वह परशुराम का युग हो या वर्तमान युग, यदि सरकार

निकम्मी तथा पापमय हो जाती है और वह ब्राह्मण संस्कृति की परवाह नहीं करती तो परशुराम के समान ईश्वर का अवतार अवश्यम्भावी है जो अग्नि, अकाल, बीमारी या अन्य विपदा से प्रलय उत्पन्न कर देगा। जब भी सरकार ईश्वर की सर्वश्रेष्ठता का अनादर करती है और *वर्णाश्रम धर्म* की रक्षा नहीं करती तो उसे उसी प्रकार की तबाही सहनी पड़ेगी जैसी कि पहले परशुराम द्वारा उत्पन्न की जा चुकी है।

पितुः कायेन सन्धाय शिर आदाय बर्हिषि ।
सर्वदेवमयं देवमात्मानमयजन्मखैः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

पितुः—पिता के; कायेन—शरीर के साथ; सन्धाय—जोड़कर; शिरः—सिर को; आदाय—रखकर; बर्हिषि—कुशा के ऊपर; सर्व-देव-मयम्—समस्त देवताओं के स्वामी, सर्वव्यापी भगवान्; देवम्—भगवान् वासुदेव को; आत्मानम्—जो सर्वत्र परमात्मा रूप में विद्यमान हैं; अयजत्—पूजा की; मखैः—यज्ञों के द्वारा।

तत्पश्चात् परशुराम ने अपने पिता के सिर को मृत शरीर से जोड़ दिया और पूरे शरीर एवं सिर को कुशों के ऊपर रख दिया। वे यज्ञों के द्वारा भगवान् वासुदेव की पूजा करने लगे जो समस्त देवताओं तथा हर जीव के सर्वव्यापी परमात्मा हैं।

ददौ प्राचीं दिशं होत्रे ब्रह्मणे दक्षिणां दिशम् ।
अध्वर्यवे प्रतीचीं वै उद्गात्रे उत्तरां दिशम् ॥ २१ ॥
अन्येभ्योऽवान्तरदिशः कश्यपाय च मध्यतः ।
आर्यावर्तमुपद्रष्ट्रे सदस्येभ्यस्ततः परम् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

ददौ—दान में दिया; प्राचीम्—पूर्वी; दिशम्—दिशा; होत्रे—होता को; ब्रह्मणे—ब्रह्मा को; दक्षिणाम्—दक्षिणी; दिशम्—दिशा; अध्वर्यवे—अध्वर्यु को; प्रतीचीम्—पश्चिमी दिशा; वै—निस्सन्देह; उद्गात्रे—उद्गाता को; उत्तराम्—उत्तरी; दिशम्—दिशा; अन्येभ्यः—अन्यों को; अवान्तर-दिशः—विभिन्न कोने (उत्तर पूर्व, दक्षिण पूर्व, उत्तर पश्चिम तथा दक्षिण पश्चिम); कश्यपाय—कश्यप मुनि को; च—भी; मध्यतः—बीच का भाग; आर्यावर्तम्—आर्यावर्त नाम से विख्यात; उपद्रष्ट्रे—उपद्रष्टा को, मंत्र को सुनकर उस पर निगरानी रखने वाले पुरोहित को; सदस्येभ्यः—सदस्य या सहयोगी पुरोहितों को; ततः परम्—जो भी शेष था।

यज्ञ-समाप्ति पर परशुराम ने पूर्वी दिशा होता को, दक्षिणी दिशा ब्रह्मा को, पश्चिमी दिशा अध्वर्यु को, उत्तरी दिशा उद्गाता को एवं चारों कोने—उत्तर पूर्व, दक्षिण पूर्व, उत्तर पश्चिम तथा दक्षिण पश्चिम—अन्य पुरोहितों को दान में दे दिये। उन्होंने मध्य भाग कश्यप को तथा आर्यावर्त उपद्रष्टा को दे दिया। शेष भाग सदस्यों अर्थात् सहयोगी पुरोहितों में बाँट दिया।

तात्पर्य : भारत में हिमालय पर्वत तथा विन्ध्याचल पर्वत के मध्य का भूभाग आर्यावर्त कहलाता है।

ततश्चावभृथस्नानविधूताशेषकिल्बिषः ।
सरस्वत्यां महानद्यां रेजे व्यब्ध इवांशुमान् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; च—भी; अवभृथ-स्नान—यज्ञ सम्पन्न करने के बाद स्नान करके; विधूत—धो डाला; अशेष—असीम;
किल्बिषः—पापकर्मों के फल; सरस्वत्याम्—सरस्वती नदी के तट पर; महा-नद्याम्—भारत की महान् नदी; रेजे—परशुराम प्रकट
हुए; व्यब्धः—निरभ्र, बादलों से रहित; इव अंशुमान्—सूर्यप्रकाश ।

तत्पश्चात् भगवान् परशुराम ने यज्ञ-अनुष्ठान पूरा करके अवभृथ स्नान किया। महान् नदी सरस्वती
के तट पर खड़े समस्त पापों से विमुक्त परशुराम जी बादलरहित आकाश में सूर्य के समान लग रहे
थे।

तात्पर्य : जैसा कि *भगवद्गीता* (३.९) में कहा गया है—*यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं*
कर्मबन्धनः—विष्णु के लिए यज्ञ रूप में कर्म करना होता है अन्यथा कर्म मनुष्य को इस भौतिक जगत से
बाँध देता है। *कर्मबन्धनः* एक के बाद दूसरा भौतिक शरीर ग्रहण करते रहने का द्योतक है। यह जन्म-मृत्यु
का चक्र ही जीवन की सारी समस्या है। इसीलिए सलाह दी जाती है कि विष्णु को तुष्ट करने के लिए यज्ञ
करने का कर्म किया जाय। यद्यपि परशुराम भगवान् के अवतार थे, किन्तु अपने पापकर्मों के लिए उन्हें
प्रायश्चित्त करना पड़ा। इस भौतिक जगत में कोई कितना ही जागरूक क्यों न रहे, कुछ न कुछ पापकर्म
करता ही है, भले ही वह पाप न करना चाहता हो। उदाहरणार्थ, सड़क पर चलते हुए उसके पाँव के नीचे
अनेक चीटियाँ तथा कीड़े कुचले जा सकते हैं और अनजाने ही अनेक जीवों की हत्या हो सकती है।
इसीलिए *पञ्चयज्ञ* का वैदिक सिद्धान्त अनिवार्य है। किन्तु इस कलियुग में लोगों को बहुत बड़ी छूट मिली
हुई है। *यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः*—हम कृष्ण के प्रच्छन्न अवतार भगवान् चैतन्य की पूजा कर
सकते हैं। *कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णम्*—यद्यपि वे साक्षात् कृष्ण हैं, किन्तु वे सदैव हरे कृष्ण कीर्तन करते रहते हैं
और कृष्णभावनामृत का प्रचार करते हैं। मनुष्य को सलाह दी जाती है कि वह *संकीर्तन यज्ञ* द्वारा इस
अवतार की पूजा करे। संकीर्तन यज्ञ सम्पन्न करना मानव समाज के लिए विशेष छूट है जिससे लोगों को
ज्ञात या अज्ञात पापकर्मों से प्रभावित होने से बचाया जा सकता है। हम अनन्त पापों से घिरे हैं अतएव हमारे
लिए अनिवार्य है कि हम कृष्णभावनामृत स्वीकार करके हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन करें।

स्वदेहं जमदग्निस्तु लब्ध्वा संज्ञानलक्षणम् ।
ऋषीणां मण्डले सोऽभूत्सप्तमो रामपूजितः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

स्व-देहम्—अपना शरीर; जमदग्निः—मुनि जमदग्नि; तु—लेकिन; लब्ध्वा—फिर से पाकर; संज्ञान-लक्षणम्—जीवन, ज्ञान तथा स्मृति के सारे लक्षणों से युक्त; ऋषीणाम्—ऋषियों के; मण्डले—सात नक्षत्रों के समूह में; सः—वह, जमदग्नि; अभूत्—बन गया; सप्तमः—सातवाँ; राम-पूजितः—परशुराम द्वारा पूजित होकर।

इस प्रकार परशुराम द्वारा पूजा किये जाने पर जमदग्नि को अपनी पूर्ण स्मृति सहित पुनः जीवन प्राप्त हो गया और वे सात नक्षत्रों के समूह में सातवें ऋषि बन गये।

तात्पर्य : ध्रुवतारा के चारों ओर चक्कर लगाने वाले सात नक्षत्र सप्तर्षि मण्डल कहलाते हैं। हमारे लोक के सबसे ऊपरी भाग में स्थित इन सातों नक्षत्रों में सात ऋषि निवास करते हैं, जिनके नाम हैं कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि तथा भरद्वाज। ये सातों नक्षत्र रात में रोज दिखते हैं और चौबीस घण्टों में ध्रुवतारा की एक परिक्रमा कर लेते हैं। इन सात नक्षत्रों के साथ अन्य नक्षत्र भी पूर्व से पश्चिम की ओर चक्कर लगाते हैं। ब्रह्माण्ड का ऊपरी भाग उत्तर कहलाता है और निचला भाग दक्षिण। हम लोग अपने सामान्य व्यवहार में यहाँ तक कि मानचित्र का अध्ययन करते समय भी ऊपरी भाग को उत्तर मानते हैं।

जामदग्न्योऽपि भगवान्रामः कमललोचनः ।
आगामिन्यन्तरे राजन्वर्तीयिष्यति वै बृहत् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

जामदग्न्यः—जमदग्नि का पुत्र; अपि—भी; भगवान्—भगवान्; रामः—परशुराम; कमल-लोचनः—कमल की पंखड़ियों जैसे नेत्र वाला; आगामिनि—आगमन; अन्तरे—मन्वन्तर में; राजन्—हे राजा परीक्षित; वर्तीयिष्यति—स्थापित करेगा; वै—निस्सन्देह; बृहत्—वैदिक ज्ञान।

हे परीक्षित, अगले मन्वन्तर में जमदग्निपुत्र कमलनेत्र भगवान् परशुराम वैदिक ज्ञान के महान् संस्थापक होंगे। दूसरे शब्दों में, वे सप्तर्षियों में से एक होंगे।

आस्तेऽद्यापि महेन्द्राद्रौ न्यस्तदण्डः प्रशान्तधीः ।
उपगीयमानचरितः सिद्धगन्धर्वचारणैः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

आस्ते—विद्यमान है; अद्य अपि—अब भी; महेन्द्र-अद्रौ—महेन्द्र नामक पहाड़ी प्रदेश में; न्यस्त-दण्डः—क्षत्रिय के हथियार (बाण, धनुष तथा फरसा) त्याग कर; प्रशान्त—ब्राह्मण के समान पूरी तरह तुष्ट; धीः—बुद्धि; उपगीयमान-चरितः—अपने उच्च चरित्र तथा कार्यों के लिए पूजित एवं वन्दित; सिद्ध-गन्धर्व-चारणैः—सिद्धों, गन्धर्वों तथा चारणों के द्वारा।

आज भी भगवान् परशुराम महेन्द्र नामक पहाड़ी प्रदेश में बुद्धिमान ब्राह्मण के रूप में रह रहे हैं।

पूर्ण तुष्ट एवं क्षत्रिय के सारे हथियारों को त्याग कर वे अपने उच्च चरित्र तथा कार्यों के लिए सदैव सिद्धों, गन्धर्वों एवं चारणों के द्वारा पूजित, वन्दित एवं प्रशंसित हैं।

एवं भृगुषु विश्वात्मा भगवान्हरिरीश्वरः ।
अवतीर्य परं भारं भुवोऽहन्बहुशो नृपान् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; भृगुषु—भृगुवंश में; विश्व-आत्मा—परमात्मा; भगवान्—भगवान्; हरिः—हरि; ईश्वरः—परम नियन्ता; अवतीर्य—अवतार लेकर; परम्—महान; भारम्—भार को; भुवः—पृथ्वी के; अहन्—मारा; बहुशः—अनेक बार; नृपान्—राजाओं को।

इस तरह परमात्मा भगवान् हरि तथा ईश्वर ने भृगुवंश में अवतार लिया और अवाञ्छित राजाओं को अनेक बार मारकर उनके भार से पृथ्वी को उबारा।

गाधेरभूमहातेजाः समिद्ध इव पावकः ।
तपसा क्षात्रमुत्सृज्य यो लेभे ब्रह्मवर्चसम् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

गाधेः—महाराज गाधि से; अभूत्—उत्पन्न हुआ; महा-तेजाः—अत्यन्त तेजस्वी; समिद्धः—प्रज्वलित; इव—सदृश; पावकः—अग्नि; तपसा—तपस्या से; क्षात्रम्—क्षत्रिय पद; उत्सृज्य—त्याग कर; यः—जो (विश्वामित्र); लेभे—प्राप्त किया; ब्रह्म-वर्चसम्—ब्राह्मण का गुण।

महाराज गाधि का पुत्र विश्वामित्र अग्नि की लपटों के समान शक्तिशाली था; उसने तपस्या द्वारा क्षत्रिय पद से तेजस्वी ब्राह्मण का पद प्राप्त किया।

तात्पर्य : परशुराम का वृत्तान्त बताने के बाद शुकदेव गोस्वामी विश्वामित्र की कथा प्रारम्भ करते हैं। परशुराम के इतिहास से पता चलता है कि यद्यपि वे ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे, किन्तु परिस्थितिवश उन्हें क्षत्रिय के रूप में कार्य करना पड़ा। क्षत्रिय का कार्य पूरा कर लेने के बाद वे पुनः ब्राह्मण बन गये और महेन्द्र पर्वत लौट आये। इसी प्रकार हम देख सकते हैं कि यद्यपि विश्वामित्र क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए थे, किन्तु तपस्या के द्वारा उन्होंने ब्राह्मण पद प्राप्त किया था। इन इतिहासों से शास्त्रों के इन कथनों की पुष्टि होती है कि वाञ्छित गुण अर्जित करके ब्राह्मण क्षत्रिय बन सकता है, क्षत्रिय ब्राह्मण या वैश्य बन सकता है और वैश्य ब्राह्मण बन सकता है। किसी का पद उसके जन्म पर निर्भर नहीं करता। श्रीमद्भागवत में (७.११.३५) नारद मुनि ने पुष्टि की है—

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम् ।

यदन्यत्रापि दृश्येत तत् तेनैव विनिर्दिशेत् ॥

“यदि किसी में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र के लक्षण दिखें तो भले ही वह अन्य जाति में क्यों न पैदा हुआ हो, उसे उन लक्षणों के अनुसार ही स्वीकार करना चाहिए।” यह जानने के लिए कि कौन ब्राह्मण है और कौन क्षत्रिय है, मनुष्य के गुण तथा कर्म पर विचार करना चाहिए। यदि सारे अयोग्य शूद्र तथाकथित ब्राह्मण तथा क्षत्रिय बन जायँ तो सामाजिक व्यवस्था बनाये रखना असम्भव हो जाय। इस तरह अनेक त्रुटियाँ आ जायेंगी और मानव समाज पशु समाज बन जायेगा जिससे सारे संसार में नारकीय स्थिति उत्पन्न हो जायेगी।

विश्वामित्रस्य चैवासन्पुत्रा एकशतं नृप ।

मध्यमस्तु मधुच्छन्दा मधुच्छन्दस एव ते ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

विश्वामित्रस्य—विश्वामित्र के; च—भी; एव—निस्सन्देह; आसन्—थे; पुत्राः—पुत्र; एक-शतम्—एक सौ एक, १०१; नृप—हे राजा परीक्षित; मध्यमः—बीच का; तु—निस्सन्देह; मधुच्छन्दाः—मधुच्छन्दा नामक; मधुच्छन्दसः—मधुच्छन्दा; एव—निस्सन्देह; ते—वे सभी।

हे राजा परीक्षित, विश्वामित्र के १०१ पुत्र थे जिनमें से बीच के पुत्र का नाम मधुच्छन्दा था।

उसके कारण अन्य सारे पुत्र मधुच्छन्दा नाम से विख्यात हुए।

तात्पर्य : इस प्रसंग में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर वेदों का यह कथन उद्धृत करते हैं—*तस्य ह विश्वामित्रस्यैकशतं पुत्राः आसुः पञ्चाशदेव ज्यायांसो मधुच्छन्दसः पञ्चाशत् कनीयांसः*—विश्वामित्र के एक सौ एक पुत्र थे। इनमें पचास मधुच्छन्दा से बड़े थे और पचास छोटे थे।

पुत्रं कृत्वा शुनःशेफं देवरातं च भार्गवम् ।

आजीगर्तं सुतानाह ज्येष्ठ एष प्रकल्प्यताम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

पुत्रम्—पुत्र; कृत्वा—स्वीकार करके; शुनःशेफम्—शुनःशेफ को; देवरातम्—देवरात, जिसके प्राणों की रक्षा देवताओं ने की थी; च—भी; भार्गवम्—भृगुवंशी; आजीगर्तम्—अजीगर्त का पुत्र; सुतान्—अपने पुत्रों को; आह—आदेश दिया; ज्येष्ठः—सबसे बड़ा; एषः—शुनःशेफ; प्रकल्प्यताम्—इसी रूप में स्वीकार किया।

विश्वामित्र ने अजीगर्त के पुत्र शुनःशेफ को अपने पुत्र रूप में स्वीकार कर लिया जो भृगुवंश में उत्पन्न हुआ था और देवरात नाम से भी विख्यात था। विश्वामित्र ने अपने अन्य पुत्रों को आज्ञा दी कि

वे शुनःशेफ को अपना सबसे बड़ा भाई मान लें।

यो वै हरिश्चन्द्रमखे विक्रीतः पुरुषः पशुः ।
स्तुत्वा देवान्प्रजेशादीन्मुचे पाशबन्धनात् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

यः—जो (शुनःशेफ); वै—निस्सन्देह; हरिश्चन्द्र-मखे—राजा हरिश्चन्द्र द्वारा सम्पन्न यज्ञ में; विक्रीतः—बेचा गया; पुरुषः—व्यक्ति;
पशुः—बलिपशु; स्तुत्वा—स्तुति करके; देवान्—देवताओं को; प्रजा-ईश-आदीन्—ब्रह्मा इत्यादि; मुमुचे—छोड़ दिया गया; पाश-
बन्धनात्—पशु की भाँति रस्सी के बन्धन से।

शुनःशेफ के पिता ने शुनःशेफ को राजा हरिश्चन्द्र के यज्ञ में बलिपशु के रूप में बलि दिये जाने के लिए बेच दिया। जब शुनःशेफ को यज्ञशाला में लाया गया तो उसने देवताओं से प्रार्थना की कि वे उसे छोड़ा दें और वह उनकी कृपा से छोड़ा दिया गया।

तात्पर्य : शुनःशेफ का वर्णन इस प्रकार है : हरिश्चन्द्र को अपने पुत्र रोहित की बलि देनी थी, किन्तु रोहित ने अपने प्राण की रक्षा करने के लिए शुनःशेफ के पिता से शुनःशेफ को यज्ञ में बलि दिए जाने के लिए खरीद लिया था। शुनःशेफ इसलिए हरिश्चन्द्र महाराज को बेच दिया गया क्योंकि वह मझला बेटा था। ऐसा प्रतीत होता है कि यज्ञ में मनुष्य की पशु रूप में बलि की प्रथा बहुत काल से चली आ रही थी।

यो रातो देवयजने देवैर्गाधिषु तापसः ।
देवरात इति ख्यातः शुनःशेफस्तु भार्गवः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; रातः—रक्षित; देव-यजने—देवताओं के पूजा स्थल में; देवैः—उन्हीं देवताओं द्वारा; गाधिषु—गाधि कुल में; तापसः—
आध्यात्मिक जीवन में बढ़ा-चढ़ा; देव-रातः—देवताओं द्वारा रक्षित; इति—इस प्रकार; ख्यातः—प्रसिद्ध; शुनःशेफः तु—तथा
शुनःशेफ; भार्गवः—भृगुवंश में।

यद्यपि शुनःशेफ भार्गव कुल में उत्पन्न हुआ था, किन्तु आध्यात्मिक जीवन में बढ़ा-चढ़ा होने के कारण यज्ञ में सम्बन्धित देवताओं ने उसकी रक्षा की। फलतः वह देवरात नाम से गाधि के वंशज के रूप में भी विख्यात हुआ।

ये मधुच्छन्दसो ज्येष्ठाः कुशलं मेनिरे न तत् ।
अशपत्तान्मुनिः क्रुद्धो म्लेच्छा भवत दुर्जनाः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

ये—जो; मधुच्छन्दासः—विश्वामित्र के पुत्र जो मधुच्छन्दा कहलाये; ज्येष्ठाः—सबसे बड़ा; कुशलम्—अच्छे स्वभाव का; मेनिरे—स्वीकार करके; न—नहीं; तत्—वह; अशपत्—शाप दे दिया; तान्—उन सबों को; मुनिः—विश्वामित्र मुनि ने; क्रुद्धः—कुपित; म्लेच्छाः—वैदिक सिद्धान्तों का उल्लंघन करने वाले; भवत—तुम सभी हो जाओ; दुर्जनाः—बुरे पुत्र।

जब विश्वामित्र ने शुनःशेफ को सबसे बड़ा पुत्र स्वीकार करने के लिए कहा तो विश्वामित्र के पचास ज्येष्ठ मधुच्छन्दा पुत्र इसके लिए राजी नहीं हुए। फलतः विश्वामित्र क्रुद्ध हो गये और उन्होंने उन सबों को शाप दे दिया, “निकम्मे पुत्रो! तुम सारे म्लेच्छ बन जाओ क्योंकि तुम वैदिक संस्कृति के नियमों के विरुद्ध हो।”

तात्पर्य : वैदिक साहित्य में म्लेच्छ तथा यवन जैसे शब्द मिलते हैं। म्लेच्छ वे हैं जो वैदिक सिद्धान्तों का पालन नहीं करते। पुराने जमाने में म्लेच्छों की संख्या कम थी और विश्वामित्र ने अपने पुत्रों को शाप दिया कि वे म्लेच्छ बन जाएँ। किन्तु कलियुग में शाप देने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि लोग स्वयं में म्लेच्छ हैं। अभी तो कलियुग की शुरुआत है, किन्तु कलियुग के अन्त तक सारे लोग म्लेच्छ हो जायेंगे क्योंकि कोई भी व्यक्ति वैदिक नियमों का पालन नहीं करेगा। तब कल्कि अवतार होगा। म्लेच्छनिवहनिधने कलयसि करबालम्—वह अपनी तलवारों से सभी म्लेच्छों का अंधाधुंध विनाश करेगा।

स होवाच मधुच्छन्दाः सार्धं पञ्चाशता ततः ।

यन्नो भवान्सञ्जानीते तस्मिंस्तिष्ठामहे वयम् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

सः—विश्वामित्र के बीच के पुत्र ने; ह—निस्सन्देह; उवाच—कहा; मधुच्छन्दाः—मधुच्छन्दा; सार्धम्—साथ; पञ्चाशता—अन्य पचास पुत्र, जो मधुच्छन्दा कहलाते थे; ततः—तब, जब पहले पचास पुत्रों को शाप मिल गया; यत्—जो; नः—हमको; भवान्—हे पिता; सञ्जानीते—आप जैसा चाहें; तस्मिन्—उसमें; तिष्ठामहे—रहेंगे; वयम्—हम सब।

जब बड़े पचास मधुच्छन्दाओं को शाप मिल गया तो मधुच्छन्दा समेत छोटे पचास पुत्र अपने पिता के पास गये और उनके प्रस्ताव को यह कहकर स्वीकार किया, “हे पिता, आप जैसा चाहेंगे हम उसी को मानेंगे।”

ज्येष्ठं मन्त्रदृशं चक्रुस्त्वामन्वञ्चो वयं स्म हि ।

विश्वामित्रः सुतानाह वीरवन्तो भविष्यथ ।

ये मानं मेऽनुगृह्णन्तो वीरवन्तमकर्त माम् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

ज्येष्ठम्—बड़ा, ज्येष्ठ; मन्त्र-दृशम्—मंत्रद्रष्टा; चक्रुः—स्वीकार कर लिया; त्वाम्—तुमको; अन्वञ्चः—पालन करने के लिए राजी हो गये हैं; वयम्—हम; स्म—निस्सन्देह; हि—निश्चय ही; विश्वामित्रः—विश्वामित्र मुनि ने; सुतान्—आज्ञाकारी पुत्रों से; आह—कहा; वीर-वन्तः—पुत्रों के पिता; भविष्यथ—भविष्य में बनो; ये—जो; मानम्—मान, सम्मान; मे—मेरा; अनुगृह्णन्तः—स्वीकार किया; वीर-वन्तम्—अच्छे पुत्रों के पिता; अकर्त—तुमने बनाया है; माम्—मुझको ।

इस तरह छोटे मधुच्छान्दाओं ने शुनःशेफ को अपना बड़ा भाई मान लिया और उससे कहा “हम आपके आदेशों का पालन करेंगे।” तब विश्वामित्र ने अपने इन आज्ञाकारी पुत्रों से कहा “चूँकि तुम लोगों ने शुनःशेफ को अपना बड़ा भाई मान लिया है अतएव मैं सन्तुष्ट हूँ। तुम लोगों ने मेरे आदेश को स्वीकार करके मुझे योग्य पुत्रों का पिता बना दिया है अतएव मैं तुम सबों को आशीर्वाद देता हूँ कि तुम भी पुत्रों के पिता बनो।”

तात्पर्य : विश्वामित्र के एक सौ पुत्रों में आधों ने शुनःशेफ को बड़ा भाई नहीं माना, किन्तु आधों ने उनके आदेश को मान लिया; अतएव पिता ने आज्ञाकारी पुत्रों को पुत्रवान होने का आशीर्वाद दिया। अन्यथा उन्हें भी पुत्रविहीन म्लेच्छ बनने का शाप दे दिया होता।

एष वः कुशिका वीरो देवरातस्तमन्वित ।
अन्ये चाष्टकहारीतजयक्रतुमदादयः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

एषः—यह (शुनःशेफ); वः—तुम्हारी तरह; कुशिकाः—हे कुशिको; वीरः—मेरा पुत्र; देवरातः—देवरात; तम्—उसकी; अन्वित—आज्ञा पालन करो; अन्ये—अन्य; च—भी; अष्टक—अष्टक; हारीत—हारीत; जय—जय; क्रतुमत्—क्रतुमान; आदयः—इत्यादि ।

विश्वामित्र ने कहा “हे कुशिको, यह देवरात मेरा पुत्र है और तुममें से एक है। उसकी आज्ञा का पालन करो।” हे परीक्षित, विश्वामित्र के अन्य अनेक पुत्र थे—अष्टक, हारीत, जय तथा क्रतुमान इत्यादि।

एवं कौशिकगोत्रं तु विश्वामित्रैः पृथग्विधम् ।
प्रवरान्तरमापन्नं तद्धि चैवं प्रकल्पितम् ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार (कुछ शापित होकर और कुछ आशीर्वाद पाकर); कौशिक-गोत्रम्—कौशिक का वंश; तु—निस्सन्देह; विश्वामित्रैः—विश्वामित्र के पुत्रों द्वारा; पृथक्-विधम्—विभिन्न प्रकार से; प्रवर-अन्तरम्—एक दूसरे में अन्तर; आपन्नम्—प्राप्त किया; तत्—वह; हि—निस्सन्देह; च—भी; एवम्—इस प्रकार; प्रकल्पितम्—निश्चित किया।

विश्वामित्र ने कुछ पुत्रों को शाप दिया और अन्यो को आशीर्वाद दिया और एक पुत्र को गोद भी लिया। इस तरह कौशिक वंश में काफी विविधता थी, किन्तु सारे पुत्रों में देवरात ही ज्येष्ठ माना गया।

इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कन्ध के अन्तर्गत “भगवान् परशुराम द्वारा विश्व के क्षत्रियों का विनाश” नामक सोलहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।